डा.राजीव कुमार,
इतिहास विभाग,
एच. डी. जैन कॉलेज, आरा

Topic - ज्योति राव फुले और डा. भीम राव आंबेडकर के सामाजिक चिंतन की तुलना कीजिए ।
पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में दोनों की भूमिका किस प्रकार भिन्न और पूरक थी ?

Compare the social thinking of Jyoti Rao Phule and Dr. Bheemrav Ambedkar.
How were the roles of both different and complementary in the early Dalit Movements of western India.

Ans. - Jyotirao Phule और B. R. Ambedkar भारतीय सामाजिक इतिहास के दो ऐसे महान चिंतक हैं, जिनके विचारों और आंदोलनों ने पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों को गहराई से प्रभावित किया। यद्यपि दोनों के कार्यकाल, सामाजिक परिस्थितियाँ और संघर्ष की रणनीतियाँ भिन्न थीं, फिर भी उनका लक्ष्य समान था—ब्राह्मणवादी सामाजिक वर्चस्व को चुनौती देना और शूद्र-अतिशूद्र/दलित समुदायों को सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक अधिकार दिलाना।

प्रस्तुत निबंध में दोनों के सामाजिक चिंतन की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए यह विश्लेषण किया गया है कि पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में उनकी भूमिकाएँ किस प्रकार भिन्न होते हुए भी परस्पर पूरक थीं।

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और संदर्भ :

(क) फुले का कालखंड: उन्नीसवीं सदी का सामाजिक पुनर्जागरण :

उन्नीसवीं सदी का महाराष्ट्र सामाजिक रूप से कठोर जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणवादी वर्चस्व और स्त्री-शिक्षा के अभाव से ग्रस्त था। इसी संदर्भ में 1873 में फुले ने Satyashodhak Samaj की स्थापना की। उनका उद्देश्य था—सत्य की खोज, सामाजिक समानता और ब्राह्मणवादी मिथकों का खंडन।

फुले का आंदोलन मुख्यतः सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर था। उन्होंने शिक्षा, स्त्री-मुक्ति, विधवा-पुनर्विवाह और शूद्र-अतिशूद्र चेतना पर बल दिया। उनकी पत्नी Savitribai Phule के साथ मिलकर उन्होंने लड़कियों और दलितों के लिए विद्यालय खोले, जो उस समय क्रांतिकारी कदम था।

(ख) आंबेडकर का कालखंड: बीसवीं सदी का राजनीतिक संघर्ष :

बीसवीं सदी में औपनिवेशिक शासन, राष्ट्रीय आंदोलन और आधुनिक शिक्षा के विस्तार ने नई राजनीतिक संभावनाएँ उत्पन्न कीं। इसी संदर्भ में आंबेडकर ने दलित प्रश्न को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में रखा। उन्होंने 1924 में Bahishkrit Hitakarini Sabha की स्थापना की और आगे चलकर स्वतंत्र राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग की।

आंबेडकर का संघर्ष केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं था; उन्होंने राजनीतिक अधिकार, पृथक निर्वाचक मंडल, आरक्षण और संवैधानिक सुरक्षा की मांग की। इस प्रकार उनका आंदोलन अधिक संगठित, राजनीतिक और विधिक आधार पर टिका हुआ था।

2. सामाजिक चिंतन की तुलनात्मक समीक्षा :

---

(1) जाति-व्यवस्था पर दृष्टिकोण :

फुले ने जाति-व्यवस्था को ब्राह्मणों द्वारा रचित एक षड्यंत्र बताया। अपनी प्रसिद्ध कृति Gulamgiri में उन्होंने आर्य आक्रमण की अवधारणा के माध्यम से यह तर्क दिया कि शूद्र-अतिशूद्र मूल निवासी थे और ब्राह्मण बाहरी शासक। उनके लिए संघर्ष मुख्यतः “ब्राह्मण बनाम शूद्र-अतिशूद्र” था।

आंबेडकर ने जाति को केवल सामाजिक षड्यंत्र नहीं, बल्कि एक संरचनात्मक और धार्मिक रूप से संस्थागत व्यवस्था माना। अपनी प्रसिद्ध रचना Annihilation of Caste में उन्होंने कहा कि जाति-व्यवस्था हिंदू धर्मग्रंथों में निहित है, अतः इसे समाप्त करने के लिए धार्मिक आधारों को चुनौती देना आवश्यक है।

तुलना:

फुले का विश्लेषण ऐतिहासिक-सांस्कृतिक था।

आंबेडकर का विश्लेषण दार्शनिक-संरचनात्मक और विधिक था।
दोनों ने जाति को अन्यायपूर्ण माना, परंतु आंबेडकर ने उसके उन्मूलन हेतु अधिक संगठित राजनीतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

(2) शिक्षा का महत्व :

फुले के लिए शिक्षा सामाजिक मुक्ति का प्रथम साधन थी। उन्होंने स्त्रियों और दलितों की शिक्षा को प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि अज्ञान ही दासता का मूल कारण है।

आंबेडकर ने भी "शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो" का नारा दिया। कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने दलितों में आधुनिक शिक्षा और आत्मसम्मान की चेतना जगाई।

पूरकता :

फुले ने शिक्षा का बीजारोपण किया; आंबेडकर ने उसे राजनीतिक सशक्तिकरण से जोड़ा।

(3) स्त्री प्रश्न :

फुले के सामाजिक चिंतन में स्त्री-मुक्ति केंद्रीय थी। उन्होंने बाल-विवाह, सती-प्रथा और विधवा-उत्पीड़न का विरोध किया। सावित्रीबाई फुले का योगदान दलित-स्त्री चेतना के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

आंबेडकर ने भी हिंदू कोड बिल के माध्यम से स्त्रियों को संपत्ति-अधिकार और वैवाहिक अधिकार देने का प्रयास किया। उन्होंने दलित स्त्रियों की दोहरी गुलामी (जाति और लिंग) को पहचाना।

भिन्नता :

फुले का स्त्री-चिंतन सामाजिक सुधारवादी था।
आंबेडकर का स्त्री-चिंतन विधिक और संवैधानिक सुधारों पर आधारित था।

(4) धर्म और सामाजिक परिवर्तन :

फुले ने ब्राह्मणवादी धर्मग्रंथों की आलोचना की, परंतु उन्होंने हिंदू धर्म से औपचारिक रूप से अलग होने का आह्वान नहीं किया। उनका उद्देश्य था—धार्मिक मिथकों का पुनर्पाठ और सामाजिक समानता।

आंबेडकर ने अंततः 1956 में बौद्ध धर्म स्वीकार किया और दलितों को भी धर्मांतरण का आह्वान किया। उनके लिए धर्म परिवर्तन सामाजिक-मानसिक मुक्ति का साधन था।
यहाँ स्पष्ट है कि आंबेडकर का दृष्टिकोण अधिक क्रांतिकारी और निर्णायक था।

3. पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में भूमिका :
---
(1) फुले की भूमिका: सामाजिक चेतना का प्रारंभ
पश्चिम भारत में दलित आंदोलनों की आधारशिला फुले ने रखी। सत्यशोधक समाज ने गैर-ब्राह्मण आंदोलन को प्रेरित किया, जिसने आगे चलकर महाराष्ट्र में सामाजिक न्याय की राजनीति को जन्म दिया।
फुले ने शूद्र-अतिशूद्रों में आत्मसम्मान की भावना जगाई। यह चेतना आगे चलकर आंबेडकर के आंदोलन के लिए सामाजिक आधार बनी।

(2) आंबेडकर की भूमिका: राजनीतिक संस्थानीकरण
आंबेडकर ने दलित आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित किया। उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में दलितों का प्रतिनिधित्व किया और पृथक निर्वाचक मंडल की मांग की।
संविधान निर्माण में उनकी भूमिका ने दलित अधिकारों को विधिक मान्यता दिलाई—आरक्षण, मौलिक अधिकार और सामाजिक न्याय के सिद्धांत।
स्पष्ट है कि फुले ने जिस सामाजिक चेतना की नींव रखी, आंबेडकर ने उसे राजनीतिक अधिकारों और संवैधानिक संरचना के माध्यम से संस्थागत रूप दिया।

5. आलोचनात्मक दृष्टि :

कुछ इतिहासकार मानते हैं कि फुले का आंदोलन मुख्यतः गैर-ब्राह्मण वर्ग तक सीमित था, जबकि आंबेडकर ने विशेष रूप से “अछूत” समुदायों पर ध्यान केंद्रित किया।
इसके अतिरिक्त, फुले का औपनिवेशिक शासन के प्रति दृष्टिकोण अपेक्षाकृत उदार था, जबकि आंबेडकर ने ब्रिटिश शासन का उपयोग दलित अधिकारों के लिए एक रणनीतिक मंच के रूप में किया।

6. निष्कर्ष :

Jyotirao Phule और B. R. Ambedkar के सामाजिक चिंतन में यद्यपि समय, रणनीति और कार्य-क्षेत्र की भिन्नताएँ थीं, फिर भी दोनों का अंतिम उद्देश्य सामाजिक समानता और दलित-मुक्ति था।
फुले ने सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी और शूद्र-अतिशूद्रों में शिक्षा व आत्मसम्मान की चेतना जगाई। आंबेडकर ने उसी चेतना को राजनीतिक शक्ति और संवैधानिक अधिकारों में परिवर्तित किया।

अतः कहा जा सकता है कि पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में फुले और आंबेडकर की भूमिकाएँ भिन्न होते हुए भी परस्पर पूरक थीं—एक ने विचार और चेतना दी, दूसरे ने उसे संगठन और संवैधानिक स्वरूप प्रदान किया।

इस प्रकार भारतीय सामाजिक इतिहास में दोनों का स्थान क्रमिक विकास की कड़ी के रूप में देखा जाना चाहिए—जहाँ फुले सामाजिक क्रांति के प्रवर्तक थे, वहीं आंबेडकर उसके संस्थापक और विधिक शिल्पकार।